

भगवान बुद्ध की वाणी

भगवान बुद्ध की वाणी

रामकृष्ण मठ
नागपुर

प्रकाशक :
स्वामी ब्रह्मस्थानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ
रामकृष्ण आश्रम मार्ग
धन्तोली, नागपुर-४४० ०१२

श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृतिग्रन्थमाला
पुष्प ८८

वर्ष १९७८ से २०१४ तक : १,३८,३००
सोलहवाँ पुनर्मुद्रण : ३१.७.२०१५
मुद्रित प्रतियाँ : ६,०००

मुद्रक :
लक्ष्मी ऑफसेट, नागपुर

मूल्य : रु. ६.००

प्रस्तावना

(प्रथम संस्करण)

'भगवान् बुद्ध की वाणी' यह हमारा नया प्रकाशन पाठकों के सम्मुख रखते हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है। भगवान् बुद्ध के उपदेश मानवजाति के लिए एक प्रकाशस्तम्भ के समान है। उनके उपदेशों से मानवमात्र को नया आलोक प्राप्त होता है। चार आर्यसत्य, पंचशील, अष्टांग मार्ग, ध्यान, करुणा, सेवा इत्यादि के सम्बन्ध में उनके जो सारगर्भ वचन हैं उनसे जीवन उन्नत बनाने के लिए सभी को मार्गदर्शन मिलता है।

श्रीरामकृष्ण मठ, मद्रास द्वारा प्रकाशित "Thus Spake The Buddha" इस मूल अंग्रेजी पुस्तक का प्रस्तुत पुस्तक अनुवाद है।

हमें विश्वास है इस प्रकाशन से पाठकों को विशेष लाभ होगा।

नागपुर — प्रकाशक

दि. १ अगस्त १९७८

अनुक्रमणिका

भगवान बुद्ध की वाणी

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।

मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ।
मैं धर्म की शरण में जाता हूँ।
मैं संघ की शरण में जाता हूँ।

स्तुति

हे अनन्त जीवन!
हे परम मृत्यु!
मै तुम्हारी शरण में आया हूँ।

तुम्हारी अग्नि से मुझे अपने निर्वापित दीप को जलाने दो!

मेरे भ्रू पर अपनी महिमा चिह्नित करके तुम मेरी लज्जा को सर्वदा के लिए मिटा दो।

तुम्हारे चरण रूपान्तरकारी अग्नि हैं
जो मेरी खोट को स्वर्ण बना देगी।

मेरे भीतर की सारी कलौंस
आग में भस्मीभूत हो जाए,
और भ्रमजाल विदीर्ण हो उठे।

— रवीन्द्रनाथ ठाकुर

भगवान बुद्ध

भगवान् बुद्धदेव का जन्म राजा शुद्धोदन और मायादेवी के पुत्र के रूप में कपिलवस्तु के समीप लुम्बिनी में हुआ था। उनका नाम सिद्धार्थ रखा गया, जिसका अर्थ है 'वह, जिसने अपना उद्देश्य पूर्ण कर लिया है।'

उनके पिता ने शिशु राजकुमार को देखने के लिए एक विद्वान् ब्राह्मण ऋषि को आमन्त्रित किया और उसे देखते ही ऋषि ने भविष्यवाणी की – "अलौकिक लक्षणों से यह ज्ञात होता है कि नवजात शिशु सारे संसार को मुक्ति प्रदान करेगा।" किन्तु ऋषि ने राजा को यह चेतावनी भी दी कि अगर बालक किसी समय रोगी, वृद्ध या मृतक को देखेगा, तो वह संसार का त्याग भी कर सकता है। राजा यह सुनकर अत्यन्त चिन्तित हो उठे। उन्होंने अल्पावस्था में ही सिद्धार्थ का विवाह कर दिया और उन्हें एक प्रकार से सुखोपभोग के समस्त साधनों से परिपूर्ण विलास-उद्यान में वन्दी ही बना लिया। पर

अवश्यम्भावी को कौन रोक सकता है? जिस प्रकार जंजीरो में बँधा हाथी जंगलों में घूमने के लिए व्यग्र हो उठता है, उसी प्रकार राजकुमार भी संसार को देखने के लिए आतुर हो उठे। सारे पथ सजाये गये और सारा नगर उत्साह से भर उठा। नगर का परिभ्रमण करते हुए सिद्धार्थ ने एक बूढे को, एक रोगी को, एक मृतक को और अन्त में एक संन्यासी को देखा। सिद्धार्थ को बताया गया कि प्रथम तीन दृश्य विरले नहीं है, क्योंकि ये तो समस्त जीवित प्राणियों की अवश्यम्भावी नियति है। इससे सिद्धार्थ अत्यन्त विचलित हुए और गहन चिन्तन में डूब गये।

जब वे राजभवन वापस लौटे, तब किसी ने उन्हें यह शुभ समाचार प्रदान किया कि उनकी पत्नी यशोधरा ने एक पुत्र को जन्म दिया है और उसका नाम राहुल रखा गया है। इस समाचार से प्रसन्न होने के बदले सिद्धार्थ ने विचार किया, 'यह तो बन्धन के ऊपर लदा बन्धन है' और उन्होंने सत्य की खोज के लिए संसार का त्याग करने का निश्चय किया। उनका यह निश्चय तब कार्य रूप

में परिणत हुआ, जब उन्होंने अपने अवतरण के प्रयोजन को पूर्ण करने के लिए सर्वस्व का परित्याग करते हुए प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। वे उरुविल्व (बुद्धगया) पहुँचे और वहाँ एक वट-वृक्ष के नीचे आत्मज्ञान प्राप्त करने का संकल्प लेकर आसीन हो गये। छह वर्षों की कठिन साधना के उपरान्त उन्हें चिरवांछित आत्मज्ञान प्राप्त हुआ और वे बोधिसत्त्व हो गये। तदुपरान्त उन्होंने अपने नये सन्देश का प्रचार करना आरम्भ किया।

बुद्ध ने वाराणसी के निकट सारनाथ में पहला उपदेश प्रदान किया। अपने महान् सन्देशों का पूरे पैंतालीस वर्षों तक प्रचार करते हुए तथा एक सुव्यवस्थित संघ की स्थापना के द्वारा उन्होंने अपने अवतरण के उद्देश्य को पूर्ण किया। तदुपरान्त वैशाख-पूर्णिमा को अस्सी वर्ष की प्रौढ़ अवस्था में कुशीनागर में उनका महापरिनिर्वाण हुआ। यह दिन तिगुना पुनीत माना जाता है, क्योंकि इसी दिन वे उत्पन्न हुए थे तथा इसी दिन उन्होंने बोध प्राप्त किया था।

भगवान् बुद्ध ने 'महापरिनिब्बानसुत' में कहा है कि

(१) वह स्थान जहाँ उन्होंने जन्म लिया, अर्थात् लुम्बिनी, (२) वह स्थान जहाँ उन्होंने स्वयं बोधत्व प्राप्त किया, अर्थात् बुद्धगया, (३) वह स्थान जहाँ उन्होंने धम्मचक्कपवत्तनसुत्त (प्रथम उपदेश) दिया, अर्थात् सारनाथ या इशिपत्तन और (४) वह स्थान जहाँ उन्होंने महापरिनिब्बान ग्रहण किया, अर्थात् कुशीनारा, ये ऐसे स्थान हैं, जो धार्मिक प्रेरणा और प्रायश्चित्त की भावना का संचार करते हैं तथा उन लोगों के लिए तीर्थ हैं जो उन पर विश्वास करते हैं।

यद्यपि हम प्रकट रूप से बौद्ध नहीं हैं, तथापि हम बुद्ध को दस अवतारों में से एक मानते हैं। महात्मा गांधी के अनुसार, "बुद्ध के उपदेशों का प्रमुख भाग आज हिन्दू धर्म का एक अपरिहार्य अंग बन गया है। गौतम ने हिन्दू धर्म में जो महान सुधार किया है, उससे विरत होना या उसके विपरीत कार्य करना आज हिन्दू भारत के लिए असम्भव है। उन्होंने अपने महान् त्याग, अपने महान् वैराग्य तथा अपनी चरम पवित्रता के द्वारा हिन्दू धर्म पर अमिट छाप छोडी है तथा हिन्दू धर्म इस महान् उपदेष्टा

का चिरन्तन ऋणी है। गौतम हिन्दू धर्म के सर्वोत्कृष्ट तत्त्वों से परिपूर्ण थे तथा उन्होंने वेदों में गड़े हुए उन कुछ उपदेशों को पुनर्जीवित किया जो कचरे के साथ लिपटे हुए पडे थे।''

वे केवल 'एशिया की ज्योति' ही नहीं थे, अपितु सारे 'संसार की ज्योति' थे। मानवता के आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक उन्नयन के लिए उनका अवधान महान् तथा अपरिमेय है। उनके जीवन एवं उपदेशों ने लक्ष लक्ष लोगों के दैनंदिन जीवन तथा चिन्तन को प्रभावित किया है।

हमारी प्रार्थना है कि प्रेम और करुणा के मूर्तिमान् विग्रह भगवान् बुद्ध अपनी कृपा-वर्षा हम सब पर करें!

□□□

भगवान् बुद्ध के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द के उद्गार

"निष्कर्ष के रूप में मैं तुम लोगों को एक ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध में कुछ बाते बताना चाहता हूँ, जिसने कर्मयोग के उपदेशों को यथार्थ रूप से व्यवहार में उतारा है। यह व्यक्ति है बुद्ध। वे ही एक ऐसे अद्वितीय पुरुष हैं, जिन्होंने इसे पूर्णतया व्यवहार में उतारा है। बुद्ध के अतिरिक्त संसार में और जितने पैगम्बर हुए, वे बाह्य कारणों से प्रेरित होकर निष्काम कर्म की ओर बढ़े ...। पर बुद्ध अहैतुक कार्य करनेवाले आदर्श कर्मयोगी है और मानवता का इतिहास उन्हें ऐसे महान् पुरुष के रूप में प्रदर्शित करता है, जितना महान् इस धरती पर और कभी पैदा नहीं हुआ। वे अतुलनीय है। उनके समान हृदय और मस्तिष्क का समन्वय करनेवाले और कोई नहीं हुआ। उनमें आत्मशक्ति का जितना प्रकाशन हुआ उतना और कभी किसी में नहीं हुआ ...।"

"बौद्ध धर्म ऐतिहासिक दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण धर्म है। पर हाँ, ऐतिहासिक दृष्टि से, दार्शनिक दृष्टि से नहीं – क्योंकि वह संसार में घटित होनेवाला बृहत्तम धार्मिक आन्दोलन था, मानव-समाज पर फूट पड़नेवाली विराटतम आध्यात्मिक लहर थी। ..."

□□□

चार आर्यसत्य

१. दुःख है।
२. दुःख का कारण है।
३. दुःख का निदान है।
४. वह मार्ग है, जिससे दुःख का निदान होता है।

□□□

पंचशील

१. हत्या न करने का धर्मादेश ग्रहण करो।
२. चोरी न करने का धर्मादेश ग्रहण करो।
३. व्यभिचार न करने का धर्मादेश ग्रहण करो।
४. असत्य न बोलने का धर्मादेश ग्रहण करो।
५. मद्यपान न करने का धर्मादेश ग्रहण करो।

अष्टांगिक मार्ग

१. सम्यक् दृष्टि (अन्धविश्वास तथा भ्रम से रहित)।

२. सम्यक् संकल्प (उच्च तथा बुद्धियुक्त)।

३. सम्यक् वचन (नम्र, उन्मुक्त, सत्यनिष्ठ)।

४. सम्यक् कर्मान्त (शान्तिपूर्ण, निष्ठापूर्ण, पवित्र)।

५. सम्यक् आजीव (किसी भी प्राणी को आघात या हानि न पहुँचाना)।

६. सम्यक् व्यायाम (आत्म-प्रशिक्षण एवं आत्मनिग्रह हेतु)।

७. सम्यक् स्मृति (सक्रिय सचेत मन)।

८. सम्यक् समाधि (जीवन की यथार्थता पर गहन ध्यान)।

□□□

बुद्ध की आज्ञाएँ

१. हत्या न कर।
२. चोरी न कर।
३. व्यभिचार न कर।
४. झूठ मत बोल।
५. निन्दा न कर।
६. कर्कश न बोल।
७. व्यर्थ बात मत कर।
८. दूसरों की सम्पत्ति का लोभ न कर।
९. घृणा न दिखा।
१०. सम्यक् रूप से विचार कर।

□□□

पुण्य कर्म

१. सत्पात्र को दान कर।

२. नैतिकता के नियमों का पालन कर।

३. शुभ विचारों का अभ्यास और विकास कर।

४. दूसरों की सेवा और देखभाल कर।

५. माता-पिता और बड़ों का सम्मान कर और उनकी शुश्रूषा कर।

६. अपने पुण्य का भाग दूसरों को दे।

७. दूसरों के द्वारा दिये गये पुण्य को स्वीकार कर।

८. सम्यकता के सिद्धान्त का श्रवण कर।

९. सम्यकता के सिद्धान्त का प्रचार कर।

१०. अपनी त्रुटियों का सुधार कर।

□□□

तीन चेतावनियाँ

१. क्या तुमने संसार में कभी अस्सी, नब्बे या सौ वर्ष के बूढ़े, जराजीर्ण, तिकोने छप्पर के समान टेढ़े, झुके हुए, लाठी का सहारा लिये, लड़खड़ाते पाँववाले, शिथिल, बहुत पूर्व युवावस्था से रहित, टूटे दाँतवाले सफेद या छितरे बालवाले या गंजे, झुर्रीदार या सूजे अंगवाले पुरुष या स्त्री को नहीं देखा?

और क्या तुम्हारे मन में यह विचार कभी नहीं उठा कि तुम्हारा भी क्षय होगा और तुम इससे बच नहीं सकते?

२. क्या तुमने संसार में कभी ऐसे पुरुष या स्त्री को नहीं देखा, जो रुग्ण व्याधिग्रस्त और अत्यन्त अस्वस्थ हो, जो अपनी ही विष्ठा में लिपटा हो और जिसे कुछ लोग उठाते तथा कुछ लोग खाट पर सुलाते हो?

और क्या तुम्हारे मन में यह विचार कभी नहीं उठा कि तुम भी रुग्ण हो सकते हो और तुम इससे बच नहीं

सकते?

३. क्या तुमने संसार में कभी किसी पुरुष या स्त्री के शव को मृत्यु के दो या तीन दिन बाद फूले हुए, काला या नीला हुए और विघटित हुए नहीं देखा?

और क्या तुम्हारे मन में यह विचार कभी नहीं उठा कि तुम भी मृत्यु को प्राप्त होगे और तुम इससे नहीं बच सकते?

□□□

सारनाथ में प्रथम प्रवचन

* पाँच भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए भगवान् ने कहा :–

* तथागत को उसके नाम से मत पुकारो, न उसे 'मित्र' ही कहो, क्योंकि वह बुद्ध है। बुद्ध करुणापूर्ण हृदय के साथ समस्त प्राणियों को समान दृष्टि से देखता है और इसलिए वे उसे 'पिता' कहते हैं। पिता का अनादर करना अनुचित है, उसका अवमानना करना पाप है।

* तथागत तितिक्षा के द्वारा निर्वाण की खोज नहीं करता, किन्तु इस कारण तुम्हें यह भी नहीं सोचना चाहिए कि वह सांसारिक सुखों में लीन है और न यह कि वह प्रचुरता में जी रहा है। तथागत ने 'मध्यम, मार्ग' की प्राप्ति की है।

* जो व्यक्ति भ्रम से मुक्त नहीं है, वह न तो मछली छोड़ने से पवित्र हो सकता है और न मांस छोड़ने से, न नग्न घूमने से और न मण्डित होने से, न जटा धारण

करने से और न वल्कल पहिनने से, न भस्म रमाने से और न ही अग्नि को आहुति देने से।

* जिस व्यक्ति के भ्रम नाश नहीं हुआ है, वह वेदपाठ से पुरोहितों को दान करने या देवताओं को बलि देने से, उत्ताप या शीत के द्वारा आत्मपीड़न करने से और अमर होने के लिए किये जानेवाले इस प्रकार के अनेक कष्टमय विधानों को सम्पन्न करने से पवित्र नहीं हो सकता।

* मांस-भक्षण से अपवित्रता का जन्म नहीं होता प्रत्युत क्रोध, प्रमाद, हठ, व्यभिचार, छल, ईर्ष्या, आत्मप्रशंसा, दूसरों की निन्दा, उद्धतता और अशुभ अभिप्रायों से अपवित्रता जन्म लेती है।

* हे भिक्षुओं! मैं तुम्हें उस मध्यम मार्ग की शिक्षा देता हूँ, जो दोनों अतिवादों से रहित है। कष्टों के द्वारा दुर्बल भक्त के मन में भ्रम एवं रुग्ण विचारों की उत्पत्ति होती है। आत्मपीड़न से सांसारिक ज्ञान की भी वृद्धि नहीं होती, तब उससे भला इन्द्रियों पर विजय कैसे पायी जा सकती है!

* जो अपने दीपक में जल भरता है, वह अन्धकार को दूर नहीं कर सकता और सड़ी लकड़ी से अग्नि उत्पन्न करना चाहता हैं; वह असफल होता है।

* शरीर-पीड़न कष्टकारी, व्यर्थ और अलाभकर होता है। और यदि कोई व्यक्ति अपनी कामाग्नि को बुझाने में सफल नहीं हुआ, तो वह एक कष्टग्रस्त जीवन बीताकर अहं-भाव से कैसे मुक्त हो सकता है?

* जब तक अहं-भाव बना हुआ है, जब तक उसमें सांसारिक या पारलौकिक सुखों की वासना विद्यमान है, तब तक सारा शरीर पीड़न व्यर्थ है। परन्तु जिसमें अहं-भाव नष्ट हो गया है, वह काम से मुक्त होता है। ऐसा व्यक्ति न तो सांसारिक सुखों की कामना करता है, न स्वर्गिक सुखों की। तथा अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से वह अपवित्र नहीं होता। उसे शरीर की आवश्यकता के अनुरूप खाने और पीने दो।

* कमल के चारों ओर जल होता है, किन्तु उसकी पँखुड़ियाँ नहीं भीगतीं। इसके विपरीत, सब प्रकार की इन्द्रियपरता हतवीर्य करनेवाली होती है। इन्द्रियपर व्यक्ति

अपने आवेगों का दास होता है तथा सुखेच्छा पतनकारी और प्राकृत होती है।

* किन्तु जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना पाप नहीं है। शरीर को स्वस्थ बनाये रखना कर्तव्य है, अन्यथा हम विवेक के दीप को जलाकर और अपने मन को सशक्त एवं शुद्ध नहीं रख सकेंगे।

* हे भिक्षुओं! यही 'मध्यम मार्ग' है जो दोनों अतिवादों से रहित है।

* तथागत ने अत्यन्त स्नेहपूर्वक अपने शिष्यों से संलाप किया। उन्होंने शिष्यों की त्रुटियों के प्रति करुणा प्रकट करते हुए उनके प्रयासों की निष्फलता की ओर संकेत किया। शास्ता के प्रेरक उपदेशों के उत्ताप से शिष्यों के हृदय को जड़ीभूत करनेवाली दुष्कामनाओं की हिमशिला विगलित हो गयी।

□□□

धर्मचक्रप्रवर्तन

* भगवान् तथागत ने सारनाथ में सद्धर्म के चक्र का प्रवर्तन किया और पाँच भिक्षुओं के समक्ष अमरता के द्वार को अनावृत्त करते हुए तथा निर्वाण के आनन्द को प्रदर्शित करते हुए उपदेश देना प्रारम्भ किया। और जब भगवान ने अपना प्रवचन प्रारम्भ किया, तो सम्पूर्ण विश्व आनन्दातिरेक से पुलकित हो उठा।

बुद्ध ने कहा :–

विशुद्ध आचार के नियम ही चक्र-दण्ड हैं; इन चक्र-दण्डों की समान दीर्घता ही न्याय है; विवेक ही लोहवलय है; विनम्रता और चिन्तनशीलता ही वे नाभिक हैं; जिनमें सत्य की अटल धुरी जमी हुई है।

* वह जो दुःख के अस्तित्व, दुःख के कारण, दुःख के निदान और मुक्तिगामी आर्य अष्टांगिक मार्ग को सम्यक् प्रज्ञा से जानता है, वह चार आर्यसत्यों को हृदयंगम कर लेता है। ऐसा व्यक्ति सम्यक् पथ पर विचरण करता है।

* सम्यक् दृष्टि उसके पथ को प्रकाशित करनेवाली मशाल होगी। सम्यक् उद्देश्य उसके पथदर्शक होंगे। सम्यक् वचन पथ में निवास करने के लिए उसके आश्रय-स्थल होंगे। उसकी पद-गति सीधी होगी, क्योंकि यह सम्यक् आचार है। जीविका उपार्जन की विधि ही उसका अनुरंजन होगी। प्रयत्न उसके चरण होंगे, सम्यक् विचार उनकी साँस होगा और शान्ति उसके पदचिन्हों का अनुसरण करेगी।

* फिर भगवान् ने अहंकार की अस्थिरता की व्याख्या की :–

जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है, वह फिर लीन होगा। अहं-भाव के सम्बन्ध में सारी चिन्ताएँ निष्फल है, अहंकार तो मृगतृष्णा के समान है और इससे सम्बन्धित सारे मनस्ताप क्षणिक हैं। वे तो उस सपने के समान विलीन हो जाएँगे, जो जागने पर टूट जाता है।

* जो जाग गया है, वह भय से मुक्त है, वह बुद्ध बन गया है। वह अपनी सारी चिन्ताओं, अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और अपने दुःखों की भी निस्सारता को जानता है।

* वही सुखी है, जिसने स्वार्थपरायणता को जीत लिया है; वही सुखी है, जिसने शान्ति प्राप्त कर ली है और वही सुखी है, जिसने सत्य को पा लिया है!

* सत्य आर्य और मधुर है; सत्य ही तुम्हें अशुभ से मुक्त कर सकता है। संसार में सत्य के अतिरिक्त कोई दूसरा मुक्तिदाता नहीं है।

* सत्य पर आस्था रखो, भले ही तुम उसकी धारणा न कर सको, भले ही तुम उसकी मधुरता को कटु समझो, भले ही तुम पहले इससे विमुख हो जाओ। सत्य पर दृढ़ आस्था रखो।

* सत्य जैसा है, वह वैसे ही सर्वोत्कृष्ट है। कोई इसमें परिवर्तन नहीं कर सकता, न कोई उसमें सुधार ही कर सकता है। सत्य पर आस्था रखो और उसे जीवन में उतारो।

* त्रुटियाँ विपथगामी बनाती हैं, भ्रमों से विपत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। ये भ्रम तीखी सुरा के समान प्रमत्त करते हैं; परन्तु वे शीघ्र ही विलीन हो जाते हैं और तुम्हें रुग्ण और अवसाद से युक्त कर जाते हैं।

* आत्मभाव एक ज्वर है; आत्मभाव एक क्षणिक दृश्य है, एक सपना है, किन्तु सत्य पूर्ण होता है, सत्य उदात्त होता है, सत्य चिरन्तन होता है। सत्य के अतिरिक्त अमरता कहीं नहीं होती। क्योंकि सत्य ही सार्वकालिक होता है।

* अगर व्यक्ति अकेला हो और सत्य का अनुगमन करने का संकल्प करे, तो वह दुर्बल हो सकता है और विचलित होकर फिर अपने पुराने रास्ते पर चल सकता है। इसलिए तुम लोग साथ साथ खड़े होओ, एक दूसरे की सहायता करो और एक दूसरे के प्रयासों को सशक्त करो।

* तुम लोग परस्पर भाइयों के समान प्रेम में एक, पवित्रता में एक और सत्य के लिए उद्यम में एक बनो।

* संसार के सभी भागों में सत्य का प्रसार और सद्धर्म का प्रचार करो, ताकि अन्त मे समस्त प्राणी धर्मराज्य के नागरिक हो जाएँ।

* दुःखों से निवृत्त होने के लिए पवित्र जीवन बिताओ।

करुणा

* उससे कहो, मैं किसी प्रतिदान की आशा नहीं करता – न ही मैं स्वर्ग में पुनर्जन्म चाहता हूँ – परन्तु मैं मनुष्यों के कल्याण की खोज करता हूँ; उन लोगों को वापस लाना चाहता हूँ जो पथविचलित हो गये हैं; उन लोगों को आलोकित करना चाहता हूँ जो भ्रम की निशा में जी रहे हैं; संसार से समस्त पीड़ा और समस्त दुःख को निकालना चाहता हूँ।

* मैं स्वयं के कल्याण के लिए विश्व के हित-साधन का प्रयास नहीं करता, मैं हित से प्रेम करता हूँ क्योंकि यह मेरी आकांक्षा है कि मैं प्राणिमात्र के आनन्द के लिए कार्य करूँ।

* तुम्हारे कष्टों का कारण जो भी हो, पर दूसरों को आहत न करो।

* कर्तव्य के पथ का अनुसरण कर; अपने भाइयों के प्रति स्नेह प्रदर्शित कर और उन्हें कष्टों से मुक्त कर।

* जो भी प्राणियों को चोट पहुँचाए या उनका अहित करे, जिसके मन में किसी भी प्राणी के प्रति सहानुभूति न हो, उसे जातिच्युत के रूप में जानो।

* समस्त प्राणियों के प्रति कल्याण-भावना ही सच्चा धर्म है। समस्त जीवित प्राणियों के प्रति अपने हृदय में अनन्त कल्याण-भावना का पल्लवन करो।

* तुम्हारा उत्साह विचलित न हो, तुम्हारे अधरों से कोई भी बुरे वचन न निकले; तुम सदा परोपकारी बने रहो, तुम्हारा हृदय प्रेम से परिपूर्ण तथा गुप्त द्वेष से रहित हो; और तुम इन दुष्कर्मियों को भी अपने प्रेमपूर्ण विचारों से – उदार, गम्भीर, सीमाहीन तथा क्रोध और घृणा से पूर्णतया रहित विचारों से – आप्लावित कर दो। मेरे शिष्यों! तुम्हें यह भी करना होगा।

* सद्धर्म के प्रमुख लक्षण हैं – सदिच्छा, प्रेम, सत्यनिष्ठा, पवित्रता, अनुभूति की उदात्तता और दया।

* सभी प्राणी आनन्द की आकांक्षा करते हैं; इसलिए समस्त प्राणियों तक अपनी करुणा का प्रसार करो।

* इस संसार में घृणा को घृणा के द्वारा नहीं रोका जा सकता। मात्र प्रेम के द्वारा ही उसका निरोध होता है। यह सनातन नियम है।

* धैर्य के साथ सहनशीलता सबसे ऊँची तपस्या है। बुद्धों ने कहा है – निर्वाण सर्वोपरि है। वह विरागी नहीं है जो दूसरों को कष्ट देता है और न वह तपस्वी ही है, जो दूसरों का उत्पीड़न करता है।

* जो दूसरों को दुःख पहुँचाकर स्वयं आनन्द पाना चाहता है, वह घृणा से नहीं बच सकता, क्योंकि वह स्वयं को घृणा के पाशों में फँसा लेता है।

* उसे सम्पूर्ण संसार के प्रति सदिच्छा विकसित करने दो, एक ऐसे मन का विकास करने दो जो सीमातीत (और बन्धुत्वपूर्ण) हो और जो ईर्ष्या और घृणा से विरहित होकर ऊपर, नीचे और आरपार निर्विघ्न रूप से परिव्याप्त हो जाए।

* जिस प्रकार एक माता अपने जीवन को भी दाँव में लगाकर अपने पुत्र की, अपने एकमात्र पुत्र की रक्षा करती है, उसी प्रकार जिसने सत्य को जान लिया है,

उसे समस्त प्राणियों के मध्य अपनी सदिच्छा का अपरिमित विकास करने दो।

* उसे सारे संसार के प्रति ऊपर, नीचे, चारों ओर निर्दोष रूप से, विभेदकारी या पक्षपात की भावना का मिश्रण किये विना, अपनी सदिच्छा का विकास करना चाहिए।

* परोपकारी व्यक्ति से सभी प्रेम करते है; उसकी मित्रता को बहुमूल्य माना जाता है; मृत्यु के समय उसका हृदय आनन्द से परिपूर्ण होकर विश्राम करता है, क्योंकि वह प्रायश्चित्त का दुःख नहीं भोगता; उसे अपने पुरस्कार का विकसित फूल तथा परिपक्व फल प्राप्त होता है।

* इस तत्त्व को समझना कठिन है कि अपना भोजन दूसरों को देकर हम अधिक बल प्राप्त करते हैं; दूसरों को वस्त्र देने से हमें अधिक सुन्दरता की प्राप्ति होती है; पवित्रता और सत्य के प्रतिष्ठानों की स्थापना करने से हमें महान् कोषों की प्राप्ति होती है।

* जिस प्रकार एक वीर योद्धा रणक्षेत्र को प्रस्थान करता है, इसी प्रकार वह व्यक्ति भी होता है, जिसमें देने

की क्षमता होती है। स्नेह और करुणा से परिपूर्ण होकर वह श्रद्धापूर्वक दान करता है तथा समस्त घृणा, ईर्ष्या और क्रोध का परित्याग कर देता है।

* परोपकारी व्यक्ति मुक्ति के पथ को पा लेता है। वह एक ऐसे व्यक्ति के समान होता है, जो इसलिए बिरवा लगाता है ताकि आनेवाले वर्षों में उसके लिए सुरक्षित रूप से आश्रय, फूल और फल प्राप्त हो सके। ठीक ऐसा ही फल परोपकार का भी होता है; ठीक ऐसा ही आनन्द उसे प्राप्त होता है, जो जरूरतमन्द की सहायता करता है; ठीक ऐसा ही महान निर्वाण के सम्बन्ध में भी है।

* प्रेम का जो पाश तुम्हें अपने खोये पुत्र के साथ बाँधता है, यह समान तीव्रता के साथ तुम्हें अपने समस्त बन्धुओं के साथ बाँधे। और तब अपने पुत्र के स्थान पर तुम सिद्धार्थ से भी महान् व्यक्ति प्राप्त करोगे; तुम बुद्ध को, सत्य के उपदेष्टा को, धर्म के प्रचारक को प्राप्त करोगे और निर्वाण की प्रशान्ति तुम्हारे हृदय में प्रविष्ट होगी।

* दयालुता के कार्यों के निरन्तर सम्पादन से ही

अमरत्व तक पहुँचा जा सकता है। करुणा और परोपकार के द्वारा पूर्णता की उपलब्धि होती है।

* सबसे बड़ी आवश्यकता स्नेहपूर्वक हृदय की है।

□□□

मनन, ध्यान और ऋद्धि

* शिष्य ने कहा – हे प्रभू! मुझे मनन का उपदेश दीजिए, ताकि मैं स्वयं को उसमें लगा सकूँ और मेरा मन पवित्र भूमि के स्वर्गलोक में प्रविष्ट हो सके।

* बुद्ध ने कहा – पाँच प्रकार के मनन होते हैं।

१. पहला मनन प्रेम का मनन है, जिसके अन्तर्गत तुम्हें अपने हृदय को इस प्रकार-समायोजित कर लेना चाहिए कि तुम समस्त प्राणियों की समृद्धि और कल्याण की कामना करो और जिसमें तुम्हारे शत्रुओं के लिए सुख की कामना भी समाहित हो।

२. दूसरा मनन करुणा का मनन है, जिसमें तुम समस्त उत्पादित प्राणियों की पीड़ाओं का विचार उनके दुःखों और चिन्ताओं की स्पष्ट कल्पना के साथ इस प्रकार करते रहो कि तुम्हारी आत्मा में उनके लिए गहन करुणा का संचार हो जाए।

३. तीसरा मनन आनन्द का मनन है, जिसमें तुम दूसरों की समृद्धि की आकांक्षा करते हो और उनको

आनन्दित देखकर आनन्दित होते हो।

४. चौथा मनन अपवित्रता का मनन है, जिसमें तुम व्यभिचार के दुष्परिणामों पर तथा पाप और रोगों के प्रभावों पर विचार करते हो। प्राय: क्षण का सुख भी कितना क्षुद्र होता है तथा इसका परिणाम भी कैसा मर्मान्तक होता है।

५. पाँचवा मनन प्रशान्ति का मनन है, जिसमें तुम प्रेम और घृणा, आतंक और उत्पीड़न, धन और दरिद्रता से ऊपर उठ जाते हो और स्वयं अपने भाग्य पर तटस्थ प्रशान्ति और पूर्ण धैर्य से विचार करते हो।

* प्रश्न :– किन ध्यानों की सहायता से मनुष्य अभिज्ञा (अलौकिक शक्तियों) तक पहुँचता है?

उत्तर :– चार प्रकार के ध्यान होते हैं।

१. प्रथम ध्यान एकान्त कहा जाता है, जिसमें तुम्हें अपने मन को इन्द्रियपरता से मुक्त कर लेना चाहिए।

२. द्वितीय ध्यान आनन्द और उल्लास से परिपूर्ण मन की स्थिरता है।

३. तृतीय ध्यान आध्यात्मिक विषयों से आनन्द की

उपलब्धि करना है।

४. चौथा ध्यान पूर्ण पवित्रता और शान्ति की अवस्था है, जिसमें मन समस्त हर्ष और विषाद के परे उठ जाता है।

विनम्र बनो और अनुचित व्यवहारों का परित्याग करो, जो तुम्हारे मन को जड़ बना देते हैं।

* प्रश्न :– हे तथागत! मेरे प्रभु, मुझे ऋद्धिपाद (जड़ पर मन का अधिकार अर्जित करने की विधि) का उपदेश दीजिए।

तथागत ने कहा :– चार प्रकार के साधनों से ऋद्धि (जड़ पर आत्मा का अधिकार) प्राप्त की जा सकती है।

१. दुर्गुणों को पनपने मत दो।

२. जो दुर्गुण उत्पन्न हो गये हैं, उन्हें दूर करो।

३. उस अच्छाई को उत्पन्न करो, जो अब तक नहीं है।

४. निष्ठापूर्वक खोजो और दृढ़ता के साथ अपनी खोज में लगे रहो।

□□□

अज्ञात शास्ता

* और तथागत ने आनन्द (अपने प्रमुख शिष्य) से कहा –

आनन्द! सभाओं के भिन्न भिन्न प्रकार होते है; जैसे – भद्रजनों की, ब्राह्मणों की, गृहस्थों की, भिक्षुओं की तथा अन्य लोगों की सभा। जब भी मैं किसी सभा में प्रवेश करता हूँ, तो मैं वहाँ बैठने के पहले स्वयं को अपने श्रोताओं के रंग में रंग लेता हूँ और अपनी वाणी को उनकी वाणी के समान बना लेता हूँ। तदुपरान्त मैं धार्मिक प्रवचन के द्वारा उन्हें उपदेश देता, स्फूर्त करता और हर्षित करता हूँ।

* मेरा मत सागर के समान है तथा उसमें भी वैसे ही आठ विलक्षण गुण है।

* मेरा मत और सागर दोनों क्रमशः गहरे होते जाते हैं।

* परिवर्तनों के मध्य भी दोनों अपना वैशिष्ट्य

बनाये रखते हैं।

* मृत शरीरों को दोनों सूखी धरती पर निकाल फेंकते हैं।

* जिस प्रकार बड़ी नदियाँ सागर में गिरकर अपने नाम का परित्याग कर देती है और तदुपरान्त महासागर के रूप में जानी जाती है, उसी प्रकार सभी जातियों के लोग जब अपने कुल का परित्याग कर संघ में प्रविष्ट होते हैं, तब वे भाई बन जाते हैं और शाक्यमुनि के रूप में जाने जाते हैं।

* सागर सभी नदियों का और बादलों से होनेवाली वर्षा का लक्ष्य है, पर न तो यह कभी भरकर छलकता है और न कभी खाली ही होता है; इसी प्रकार धर्म भी कोटि कोटि मनुष्यों के द्वारा स्वीकार किया जाता है, पर न तो यह कभी बढ़ता है और न ही घटता है।

* जिस प्रकार महासागर का केवल एक ही स्वाद, नमक का ही स्वाद होता है, उसी प्रकार मेरे मत की केवल एक ही सुवास है और वह है मुक्ति की सुवास।

* सागर और धर्म दोनों रत्नों, मोतियों और

मणियों से परिपूर्ण होते हैं, और दोनों में महानतम प्राणियों का निवास होता है।

* मेरा मत पवित्र है तथा इसमें सभ्य और असभ्य, धनी और निर्धन के बीच कोई भेदभाव नहीं होता।

* मेरा मत जल के समान है, जो बिना भेदभाव के सब कुछ परिमार्जित करता है।

* मेरा मत अग्नि के समान है, जो स्वर्ग और पृथ्वी तथा बड़े और छोटे के बीच विद्यमान समस्त वस्तुओं को उदरस्थ कर लेती है।

* मेरा मत स्वर्ग के समान है क्योंकि उसमें स्थान है – वहाँ पुरुष और स्त्री, लड़का और लड़की, शक्तिवान् और निर्बल सभी के स्वागत के लिए पर्याप्त स्थान है।

* पर जब मैं बोलता हूँ, तो वे मुझे नहीं पहिचानते और कहते, "यह कौन हो सकता है, जो इस प्रकार बोलता है? यह मनुष्य है या भगवान्?" फिर धार्मिक प्रवचन के द्वारा उन्हें सीख दे, स्फूर्त कर और प्रहर्षित कर मैं अन्तर्हित हो जाता। पर मेरे अन्तर्हित होने पर भी वे मुझे पहिचान न पाते।

* निन्दा न करना, घात न करना, मूलभूत उपदेशों में वास करना, भोजन में मात्रा जानना, एकान्तवास, चित्त को योग में लगाना – यह बुद्धों की सीख है।

* बुद्ध का शिष्य तृष्णाओं के नाश में आनन्दित होता है।

* उदात्त सहनशीलता और धैर्य तथागत का परिधान है। परोपकार तथा प्राणिमात्र के प्रति प्रेम तथागत का निवास है। सद्धर्म के सूक्ष्म अर्थों की धारणा के साथ ही उसके विशिष्ट अनुप्रयोग का ज्ञान तथागत का आसन है।

□□□

मन

* मन सभी प्रवृत्तियों का अगुवा है। मन समस्त इन्द्रियों की शक्तियों से उत्कृष्ट है। सभी सापेक्ष विचार मन में ही पैदा होते हैं।

* मन सभी संवेदनाओं का अग्रगामी है। इस भौतिक विश्व के समस्त तत्त्वों की अपेक्षा मन सबसे सूक्ष्म है। समस्त विषयभूत चेतना मन में ही उत्पन्न होती है। यदि कोई शुद्ध मन से बोलता या काम करता है, तो आनन्द उसकी छाया के समान उसका अनुसरण करता है।

* "दूसरे मुझसे घृणा करते हैं, अविश्वनीय समझते हैं, मेरे बारे में गलतफहमी होती है तथा मुझे धोखा दिया जाता है" – जो इस प्रकार के विचारों का पोषण अपने मन में करता है, वह उन कारणों से मुक्त नहीं हो सकता, जो उस पर अपना विध्वंसात्मक प्रभाव डालते हैं।

* जिसने स्वयं पर अधिकार प्राप्त कर लिया है, वह वस्तुतः उस व्यक्ति से भी महान् विजेता है, जिसने

यद्यपि स्वयं से हजार गुना अधिक शक्तिशाली हजार शत्रुओं को पराजित तो किया है, पर जो अपनी इन्द्रियों का दास बना हुआ है।

* जिसका मन बाहरी सौन्दर्य और वैभवों की खोज में भटकता है, जो अपनी इन्द्रियोंपर स्वामी के समान नियन्त्रण रखने में समर्थ नहीं है, जो अशुद्ध भोजन खाता है, जो आलसी है तथा नैतिक साहस से हीन है, उस व्यक्ति को अज्ञान और दु:ख ठीक वैसे ही अभिभूत कर लेते हैं, जैसे आँधी सूखे वृक्ष को तहस-नहस कर देती है।

* जिस प्रकार वर्षा की बूँदे उस घर में टपकती है, जिसकी छप्पर ठीक नहीं होती, इसी प्रकार आसक्ति, घृणा और विभ्रम उस मन में प्रवेश करते हैं, जो आत्मनिष्ठ ध्यान से विरत होता है।

* जिसका मन काम से लिप्त नहीं है, जो घृणा से प्रभावित नहीं है, जिसने शुभ और अशुभ दोनों का परित्याग किया है, ऐसे जागरूक व्यक्ति को कोई भय नहीं होता।

* जो हृदय अज्ञान के पथ का अनुगमन करता

है वह व्यक्ति को उसके सबसे घृणित एवं कट्टर शत्रु की अपेक्षा अधिक हानि पहुँचाता है।

* जिस प्रकार तीर बनानेवाला तीर को सीधा करता है, ठीक वैसे ही विवेकी व्यक्ति अस्थिर, चंचल, दुर्रक्षित और दुर्नियन्त्रित मन को सीधा कर लेता है।

* मन का वारण कठिन होता है। वह अत्यन्त सूक्ष्म, त्वरित तथा आकांक्षित स्थान पर तुरन्त दौड़ जानेवाला होता है। ऐसे मन का नियन्त्रण करना उत्तम है। संयमित मन आनन्द को उत्पन्न करता है।

* जिसका मन स्थिर नहीं है, जो सद्धर्म से अवगत नहीं है, जिसकी आस्था चंचल है, ऐसे व्यक्ति की प्रज्ञा कभी भी पूर्ण नहीं होती।

* यह मन दूरगामी, अकेला विचरनेवाला, अशरीरी और गुहाशयी (चेतना का पीठ) है। जो इसका संयम करते हैं, वे ही मार (काम) के बन्धन से मुक्त होते हैं।

* जितनी भलाई माता-पिता या दूसरे भाई-बन्धु नहीं कर सकते, उससे अधिक भलाई ठीक मार्ग पर लगा

हुआ चित्त करता है और वह व्यक्ति का उन्नयन करता है।

* जितनी हानि शत्रु शत्रु की और वैरी वैरी की करता है, उससे अधिक बुराई झूठे मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।

* अनभ्यास ध्यान की अपवित्रता है; अस्वच्छता शरीर की अपवित्रता है; प्रमाद इन्द्रियों की अपवित्रता है और चंचलता मन की अपवित्रता है।

* जो व्यक्ति जाग्रत् है, जिसका मन तृष्णा से रहित है, उस व्यक्ति के लिए कोई भय नहीं।

* सभी प्रकार की बुराइयों से दूर रहना, सत्कर्मों को सम्पन्न करना तथा, अपने मन को शुद्ध करना – यही बुद्धों का मत है।

* मन का उन्नयन करो और दृढ़ संकल्प के साथ निष्ठापूर्वक श्रद्धा की खोज करो; सदाचरण के नियमों का उल्लंघन मत करो; तुम्हारा आनन्द बाहरी वस्तुओं पर आधारित न होकर तुम्हारे अपने मन पर निर्भर हो। इस प्रकार तुम्हारा यश युगों तक बना रहेगा और तुम तथागत के स्नेह के पात्र होंगे। □□□

स्व

* वह व्यक्ति जो स्व के स्वभाव को जानता है और यह समझता है कि उसकी इन्द्रियाँ कैसे कार्य करती हैं, वह 'मैं' के लिए कोई अवकाश नहीं देता तथा इस प्रकार वह अनन्त शान्ति प्राप्त करता है। संसार 'मैं' के चिन्तन में लीन है और इससे मिथ्याबोध की सृष्टि होती है।

* कुछ कहते हैं कि 'मैं' मृत्यु के बाद बचा रहता है, कुछ कहते हैं कि वह नष्ट हो जाता है। ये दोनों गलत हैं तथा उनकी भूल अत्यन्त घातक है।

* क्योंकि यदि वे 'मैं' को नाशवान् कहें तब तो जिन फलों की प्राप्ति के लिए वे चेष्टारत हैं, वे भी नष्ट हो जाएँगे और कुछ समय बाद कोई भावी जीवन भी नहीं रहेगा। पापपूर्ण स्वार्थपरायणता से ऐसी मुक्ति पुण्यहीन हुआ करती है।

* दूसरी ओर, जब कुछ लोग यह कहते हैं कि 'मैं' नष्ट नहीं होगा, तब तो जीवन और मृत्यु के बीच

में केवल एक ही अस्तित्व अजन्मा और अमर होगा। अगर उनका 'मैं' ऐसा है, तो वह पूर्ण है तथा कर्मों के द्वारा उसे पूर्ण नहीं बनाया जा सकता। यह चिरन्तन अविनाशी 'मैं' कभी भी परिवर्तित नहीं होगा। स्व भगवान् और स्वामी हो जाएगा तथा तब पूर्ण को पूर्ण बनाने से कोई लाभ नही होगा; नैतिक उद्देश और निर्वाण अनावश्यक हो जाएँगे।

* पर हम अब सुख और दुःख के चिह्नों का अवलोकन करते हैं। इसमें कहाँ संगति है? यदि हमारे कार्यों को करनेवाला 'मैं' नहीं है, तो 'मैं' की सत्ता ही नहीं है; कार्य के पीछे कोई कर्ता नहीं है, जानने के पीछे कोई ज्ञाता नहीं है, जीने के पीछे कोई भगवान् नहीं हैं।

* अब ध्यान दो और सुनो। इन्द्रियाँ विषयों से मिलती है और उनके सम्पर्क से संवेदना का जन्म होता है। उससे स्मृति पैदा होती है। अतः जैसे आतशी शाशे के माध्यम से सूर्य की शक्ति अग्नि के रूप में प्रकट होती है, वैसे ही इन्द्रिय और विषय से उत्पन्न ज्ञान से उस विधाता का जन्म होता है, जिसे तुम 'स्व' कहते हो।

अंकुर बीज से उत्पन्न होता है; बीज अंकुर नहीं है; दोनों एक और समान नहीं है फिर वे भिन्न भी नहीं हैं! इस प्रकार प्राणि-जीवन का जन्म होता है।

* तुम जो 'मैं' के दास हो, जो प्रात:काल से रात्रि पर्यन्त स्व की सेवा में खटते रहते हो, जो जन्म, वार्धक्य, रुग्णता और मृत्यु के निरन्तर भय में जीवन यापन करते हो, यह सुसमाचार सुनो कि तुम्हारे क्रूर स्वामी का कोई अस्तित्व नहीं है।

* स्व एक त्रुटि, एक भ्रान्ति और एक स्वप्न है। अपनी आँखे खोलो और जागो। वस्तुओं को उनके यथार्थ रूप में देखो और इससे तुम्हें सुख मिलेगा।

* जो व्यक्ति जाग्रत् है, वह दु:स्वप्न से भयभीत नहीं होगा। जिसने रस्सी की प्रकृति को जान लिया है, जो साँप के समान प्रतीत होती थी, वह काँपना बन्द कर देगा।

* जिसने यह जान लिया है कि 'मैं' की सत्ता नहीं है, उसका सारा काम-भाव और अहंकारमूलक इच्छाएँ जाती रहेंगी।

* पूर्वजन्मों से प्राप्त वस्तुओं से लगाव लोलुपता और इन्द्रियासक्ति दु:ख के तथा संसार की असारता के कारण हैं।

* अपनी स्वार्थपरायणता की जकड़नेवाली प्रवृत्ति का समर्पण कर दो और तब तुम्हें मन की उस पापरहित शान्त स्थिति की उपलब्धि होगी, जिसमें पूर्ण प्रशान्ति, कल्याण और विवेक विद्यमान हैं।

* अगर कोई जानता है कि स्व प्रिय है, तो उसे अपनी सुरक्षा भलीभाँति करनी चाहिए। विवेकी व्यक्ति को तीनों पहर सतर्क रहना चाहिए।

* स्व की शरण स्व है
क्योंकि इसके अतिरिक्त और कौन शरण हो
सकता है?
एक पूर्ण संयमित स्व के द्वारा
व्यक्ती ऐसी शरण प्राप्त करता है,
जिसे पाना कठिन है।

* स्वयं के द्वारा ही बुराई की जाती है; वह स्वयं जात तथा स्वयं हेतु है। बुराई सारे संसार को कठोर हीरे

के समान पीसती है।

* स्वयं के द्वारा ही बुराई की जाती है,
स्वयं के द्वारा ही कोई भ्रष्ट होता है।
स्वयं के द्वारा ही बुराइयों से बचा जाता है,
स्वयं के द्वारा ही व्यक्ति पवित्र होता है।
स्वयं पर ही पवित्रता और अपवित्रता निर्भर है,
कोई दूसरे को पवित्र नहीं कर सकता।

□□□

बुराई, अच्छाई और कष्ट

* बुद्ध ने कहा – मेरे मित्रो! बुराई क्या है?

मेरे मित्रो! हत्या बुरी है; चोरी बुरी है, कामवासना से युक्त होना बुरा है; झूठ बोलना बुरा है; निन्दा करना बुरा है; गाली देना बुरा है; मिथ्या कथन बुरा है; ईर्ष्या बुरी है; घृणा बुरी है; मिथ्या मत का पालन करना बुरा है, मित्रो! ये सारी वस्तुएँ बुरी है।

* और मेरे मित्रो! बुराई की जड़ क्या है?

इच्छा ही बुराई की जड़ है; द्वेष ही बुराई की जड़ है; भ्रम ही बुराई की जड़ है; ये सभी चीजें बुराई की जड़ हैं।

बुरे कार्य को अधूरा छोड़ देना उत्तम है।
क्योंकि एक कुकर्म इस जन्म के बाद
व्यक्ति को पीड़ित करता है;
सत्कार्य को पूरा किया जाना अच्छा है,
जिसको कर लेने पर बाद में पछतावा
नहीं करना पड़ता।

* बुराई के बारे में हल्के ढंग से सोचते हुए यह मत कहो कि "यह मेरे समीप तक नहीं आएगी।" एक घड़ा भी बूँद बूँद से भर जाता है। इसी प्रकार मूर्ख व्यक्ति भी थोड़ा थोड़ा करके खुद को बुराई से भर लेता है।

* जिस प्रकार कम रक्षकों और अधिक सम्पत्ति से युक्त व्यापारी खतरनाक रास्ते पर से जाना छोड़ देता है, या जिस प्रकार जीने की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति विष से बचता है, उसी प्रकार व्यक्ति को बुराई से बचना चाहिए।

* न तो आकाश में, न सागर के मध्य में और न ही पर्वत की गुफा में घुसने से पृथ्वी का वह स्थल प्राप्त हो सकता है, जहाँ निवास करने से व्यक्ति दुष्कर्म के परिणामों से बच सके।

* प्राणियों के सारे कर्म दस बुराइयों से दूषित हो जाते हैं और यदि इन दस बुराइयों से दूर रहा जाए, तो वे अच्छे बन जाते हैं। इसमें तीन बुराइयाँ शरीर की है, चार जीभ और तीन मन की।

* शरीर की बुराइयाँ है – हत्या, चोरी और

व्यभिचार; झूठ बोलना, निन्दा करना, गाली देना और बकवाद करना जीभ की बुराइयाँ हैं, लालच, द्वेष और त्रुटि मन की बुराइयाँ हैं!

* मैं तुम्हें दस बुराइयों से बचने की सीख देता हूँ :

१. हत्या मत करो, बल्कि जीवन का सम्मान करो।

२. चोरी मत करो, न लूटपाट ही करो, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को उसके परिश्रम से प्राप्त फल का स्वामी बनने में सहायता दो।

३. अपवित्रता से दूर रहो तथा ब्रह्मचर्य से पूर्ण जीवन व्यतीत करो।

४. झूठ मत बोलो; सत्यवादी बनो। बिना भय किये, स्नेहपूर्ण हृदय से, विवेक के साथ सच बोलो।

५. बुरी खबरों का आविष्कार मत करो और न ही उन्हें फैलाओ। छिद्रान्वेषण मत करो, बल्कि अपने साथियों के शुभ पक्ष का अवलोकन करो, ताकि तुम निष्ठापूर्वक उनकी उनके शत्रुओं से रक्षा कर सको।

६. शपथ न लो, पर चारुता और मर्यादा के साथ बोलो।

७. बकवाद में समय न गँवाओ, पर काम से लगे रहो या चुप रहो।

८. लालच न करो और न द्वेष ही, बल्कि दूसरे लोगों के सौभाग्य पर हर्षित होओ।

९. अपने हृदय को ईर्ष्या से मुक्त करो और अपने शत्रुओं के प्रति भी द्वेष-भाव न रखो, बल्कि समस्त प्राणियों को स्नेहभाव के साथ अपनाओ।

१०. अपने मन को अज्ञान से मुक्त करो और सत्य को सीखने के लिए जिज्ञासु बनो। विशेषकर यह एक बात अत्यावश्यक है, अन्यथा तुम नास्तिकता या भूल के शिकार हो सकते हो।

* यदि कोई व्यक्ति पाप करता है, तो उसे पुन: पाप न करने दो; उसे पाप में आनन्द न लेने दो; बुराई का परिणाम पीड़ा होती है।

* मनुष्य प्रेम के द्वारा क्रोध को जीते; पुण्य के द्वारा पाप को हराए; औदार्य से लोभी को पराजित करे तथा सच्चाई से झूठे को जीते।

* यदि व्यक्ति पाप – भावना के साथ बोलता या

कार्य करता है, तो पीड़ा उसका पीछा ठीक वैसे ही करती है, जैसे चक्का गाड़ी को खींचनेवाले बैल के पैरों का अनुसरण करता है।

* हम अपने विचारों को परखें ताकि हम पाप न करें, क्योंकि हम जैसा करेंगे वैसा ही भरेंगे।

* पापी व्यक्ति को पाप मधुरस के समान मीठा लगता है। जो मूर्ख अपनी मूर्खता से परिचित है, वह वहाँ तक तो बुद्धिमान् है। किन्तु जो मूर्ख अपने को बुद्धिमान् समझता है, वह वस्तुतः मूर्ख होता है।

* प्रश्न :– कष्टों की समाप्ति का रास्ता कौनसा है?

* उत्तर :– वह आर्य अष्टांगिक मार्ग है, जो दुःखों से मुक्त करता है।

* प्रश्न :– फिर अच्छा क्या है?

* उत्तर :– चोरी से बचना अच्छा है; इन्द्रियपरता से बचना अच्छा है; झूठ से बचना अच्छा है; निन्दा से बचना अच्छा है; कठोरता का दमन अच्छा है; बकवाद से बचना अच्छा है; समस्त ईर्ष्या को निकाल देना अच्छा

है; द्वेष का निराकरण अच्छा है; सत्यनिष्ठ होना अच्छा है, ये सभी बातें अच्छी है।

* प्रश्न :– और मेरे मित्रो, अच्छाई का मूल क्या है?

* उत्तर :– इच्छा से मुक्ति ही अच्छाई का मूल है; द्वेष से मुक्ति और भ्रम से मुक्ति; मेरे मित्रो, ये वस्तुएँ अच्छाई का मूल है।

* प्रश्न :– हे भाइयो, फिर दुःख क्या है?

* उत्तर :– जन्म दुःख है; वार्धक्य दुःख है; रोग दुःख है; शोक और विपत्ति दुःख है; विपदा और निराशा दुःख है; कुत्सित वस्तुओं के साथ संलग्नता दुःख है; हम जिससे प्रेम करते हैं उसकी हानि और जिसकी हम आकांक्षा करते है उसे पाने की विफलता दुःख है। हे भाइयो, ये सारी चीजें दुःख है।

* प्रश्न :– और दुःख का उद्‌गम कौनसा है?

* उत्तर :– काम, वासना और जिजीविषा ही, जो सर्वत्र सुख की कामना करते है तथा निरन्तर पुनर्जन्म के कारण होते है, दुःख का उद्‌गम हैं। इन्द्रियासक्ति,

इच्छा, स्वार्थपरायणता ये सारी वस्तुएँ हे भाइयो, दुःख का उद्गम है।

* प्रश्न :– दुःखों के नाश का पथ कौनसा है?

* उत्तर :– यह आर्य अष्टांगिक मार्ग ही दुःखों के नाश की ओर ले जाता है। हे मित्रो, जहाँ तक एक सदाचारी युवक इस प्रकार दुःख को, दुःख के उद्गम को और दुःख से मुक्ति के मार्ग को समझता है और आमूलचूल रूप से वासना का उच्छेद करता, क्रोध का निग्रह करता, 'मैं हूँ' के झूठे दर्प का विनाश करता और बुद्धत्व की प्राप्ति करता है, वह इसी जीवन में समस्त दुःखों का अन्त कर लेता है।

□□□

भिक्षु

* इस जीवन में जिसने पाप और पुण्य दोनों का परित्याग कर दिया है, जो पवित्र है, जो इस संसार में विवेकयुक्त होकर रहता है, वही वास्तविक रूप में भिक्षु कहा जाता है।

* झूठ बोलनेवाला अनुशासनहीन व्यक्ति सिर मुँड़ाने से ही तपस्वी नहीं वन जाता। जो कामना और लोभ से भरा हुआ है, वह भला तपस्वी कैसे हो सकता है?

* जिसने छोटी-वड़ी दोनों प्रकार की बुराइयों का दमन कर लिया है, उसे ही तपस्वी कहा जाता है, क्योंकि उसने सभी बुराइयों को पराजित किया है।

* जो आलसी और अज्ञानी है, वह केवल चुप रहकर साधु नहीं वन जाता। परन्तु जो विद्वान् पुरुष तराजू में तौलने के समान उत्तम को स्वीकार करता और बुराई का परित्याग करता है, वही वस्तुत: साधु है।

* इसलिए कोई भी व्यक्ति मात्र इस हेतु भिक्षु नहीं

बन जाता कि वह दूसरों से भिक्षा माँगता है। औपचारिक क्रियाओं को सम्पन्न करनेवाला व्यक्ति वास्तविक रूप से भिक्षु नहीं बनता।

* भिक्षु, जब तक तूने तृष्णाओं को समाप्त नहीं किया है, तब तक तू सन्तुष्ट मत हो। पाप-भावना की समाप्ति ही सबसे बड़ा धर्म है।

* हे भिक्षु, इसलिए तू अपने प्रकाश को इस प्रकार विकिरित कर कि संसार का परित्याग कर जब तूने अपना सारा जीवन धर्म और धार्मिक अनुशासन में लगाया है, तो तुझे शील के नियमों का अनुगमन करना चाहिए तथा तुझे अपने गुरुओं और बड़ों के प्रति सम्मानपूर्ण, स्नेहपूर्ण और सेवापरायण होना चाहिए।

* जो श्रमण स्त्री को स्त्री की दृष्टि से देखता है या उसका स्त्री के रूप में स्पर्श करता है, उसने अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दी है और वह शाक्यमुनि (बुद्ध) का शिष्य नहीं रह गया है।

* हे भिक्षु, यदि अन्ततोगत्वा तुझे स्त्री के साथ बातचीत करनी ही पड़े तो स्वच्छ हृदय से कर और स्वयं

विचार कर, "मैं एक श्रमण के रूप में इस पापपूर्ण ससार में कमल की उस निष्कलंक पँखुड़ी के समान जीवन-यापन करूँगा, जो उस पंक में लिप्त नहीं होती, जिसमें वह विकसित होती है।"

* यदि स्त्री वृद्धा हो, तो उसे अपनी माता समझ; यदि युवा हो, तो अपनी बहिन, और यदि बहुत छोटी हो, तो उसे अपनी पुत्री मान।

* पुरुषों में काम की शक्ति अत्यधिक होती है तथा उससे पूरी तरह से भयभीत होना चाहिए। इसलिए निष्ठापूर्ण अध्यवसाय एवं शराग्र के समान तीक्ष्ण विवेक जीवन में लाने का व्रत लो।

* हे भिक्षु, तू अपना सिर सम्यक् विचारों के शिरस्त्राण से ढ़क ले तथा दृढ़ संकल्प लेकर पाँच कामनाओं के विरुद्ध युद्ध कर।

* जब व्यक्ति स्त्री के सौन्दर्य से भ्रमित हो जाता है और मन चौंधिया जाता है, तब काम मनुष्य के हृदय पर बादलों सा छा जाता है।

* अपने भीतर पाशविक विचार जगाने या स्त्री की

ओर वासनापूर्ण इच्छा से देखने की अपेक्षा प्रदग्ध लोह शलाका से आँखों को निकाल फेंकना अधिक अच्छा है।

* शरीर का संयम अच्छा है; वाणी का संयम अच्छा है; मन का संयम अच्छा है; सर्वत्र संयम अच्छा है। जो संन्यासी सभी में संयम करता है, वह समस्त प्रकार के दु:खों से मुक्त हो जाता है।

* वह व्यक्ति, जिसके हाथ, पैर, वाणी और मस्तिष्क संयमित हैं; वह व्यक्ति, जिसे ध्यान में आनन्द आता है और जो प्रशान्त है; वह व्यक्ति, जो एकाकी और आत्मतुष्ट है; उसे वे भिक्षु कहते हैं।

* जिसका शरीर और मन के प्रति किसी भी प्रकार का 'मैं और मुझे' का भाव नहीं है, जो उसके लिए शोक नहीं करता जो उसके पास नहीं है, वही विस्तृत: भिक्षु कहलाता है।

* जो भिक्षु एकान्त स्थान में वास करता है, जिसने अपने मन को स्थिर कर लिया है, जो धर्म को स्पष्ट रूप से देखता है, वह मनुष्यों से परे के आनन्द का उपभोग करता है।

* उसे अपने मार्ग में अपनत्वपूर्ण तथा व्यवहार में परिमार्जित होने दो; आनन्द से भरकर वह दुःख को समाप्त कर देगा।

* जिस प्रकार चम्पक की लता अपने मुरझाए हुए फूलों को विखरा देती है, वैसे ही, हे भिक्षुओ! तुम्हें काम और द्वेष को समग्र रूप से बिखरा देना चाहिए।

* जो भिक्षु अत्यन्त अल्पावस्था में बुद्ध के उपदेशों में स्वयं को समर्पित कर देता है, वह इस संसार को ठीक वैसे ही आलोकित करता है, जैसे बादलों से मुक्त चन्द्रमा।

* जैसे कुश को गलत ढंग से पकड़ने से हथेली कट जाती है, उसी प्रकार यदि वीतरागी जीवन त्रुटिपूर्ण ढंग से विताया जाय, तो वह व्यक्ति को नरक में ढ़केल देता है।

* वे साधु जो हानिरहित हैं,
जिनका शरीर सदैव संयमित है,
मृत्युहीन स्थिती को प्राप्त करते हैं,
जहाँ जाकर
वे कभी शोक नहीं करते।

□□□

उपदेशक

* तथागत ने अपने शिष्यों से कहा :-

जब मेरा तिरोधान हो जाए और मैं तुमको फिर सम्बोधित न कर सकूँ और धार्मिक प्रवचनों के द्वारा तुम्हारे मन को उन्नत न कर सकूँ, तब तुम मेरे स्थान पर सत्य का उपदेश देने के लिए अपने में से कुल और शिक्षा में अच्छे व्यक्तियों का चुनाव कर लेना।

* और उन व्यक्तियों को तथागत का परिधान धारण करने देना, उन्हें तथागत के निवास में प्रवेश करने तथा तथागत के आसन पर आसीन होने देना।

* अलौकिक सहिष्णुता और धैर्य तथागत का परिधान है। परोपकार और सर्वभूतों के प्रति प्रेम ही उसका आवास है। सद्धर्म के विशेष अनुपयोग की धारणा ही तथागत का आसन है।

* उपदेशक को संकोचरहित मन से सत्य का प्रतिपादन करना चाहिए। उसमें प्रवर्तन की शक्ति होनी

चाहिए, जो सद्गुण और अपने संकल्प के प्रति दृढ़ निष्ठा पर आधारित हो।

* उपदेशक को अपने उचित दायरे में ही रहना चाहिए और अपनी गतिविधियों में नियमित होना चाहिए। उसे अपने मिथ्या अहंकार को तुष्ट करने के लिए बड़े लोगों की संगति नहीं खोजनी चाहिए। उसे ऐसे व्यक्तियों की संगति भी नहीं करनी चाहिए, जो छिछोरे और अनैतिक हैं। प्रलोभन से घिरने पर उसे निरन्तर बुद्ध का चिन्तन करना चाहिए, और वह विजयी होगा।

* जो भी सद्धर्म-श्रवण करने के लिए आएँ, उपदेशक उनका उदारता से स्वागत करे तथा उसके प्रवचन आत्म-स्तुति से रहित हों।

* उपदेशक को न तो दूसरों का छिद्रान्वेषण करना चाहिए, न उसे अन्य उपदेशकों की निन्दा करनी चाहिए और न मिथ्यापवाद कहना चाहिए, न ही कटु शब्दों का व्यवहार करना चाहिए। वह भर्त्सना करने तथा आचरण की निन्दा करने के लिए अन्य शिष्यों के नामों का उल्लेख न करे।

* उपदेशक को स्फूर्ति और उल्हासपूर्ण आशा से परिपूर्ण होना चाहिए। उसे कभी थकना नहीं चाहिए और कभी भी अन्तिम सफलता से निराश नहीं होना चाहिए।

* उसे झगड़ालू विवादों में हर्षित नहीं होना चाहिए और न उसे अपनी प्रतिभा की उच्चता सिद्ध करने के लिए विरोधाभासों में ही पड़ना चाहिए, प्रत्युत उसे स्थिर एवं शांत होना चाहिए।

* उसके हृदय में कभी भी उग्र विचार न रहें और उसे समस्त प्राणियों के प्रति परोपकार की प्रवृत्ति का परित्याग कभी भी नहीं करना चाहिए।

* जब तक लोग सत्य-वचनों की ओर ध्यान न दे, तब तक उपदेशक को यह जानना चाहिए कि उसे उनके हृदयों में अधिक गहराई तक पहुँचना होगा; परन्तु जब वे उसके शब्दों पर ध्यान देने लगें, तो उसे आशा करनी चाहिए कि शीघ्र ही वे बोध को प्राप्त करेंगे।

* हे भद्रवंशीय शिक्षित जनो, तुम लोग जिन्होंने तथागत के वचनों का प्रचार करने का व्रत लिया है, तुम्हारे हाथों में महाभाग सत्य के सद्धर्म को हस्तान्तरित

करते, सौंपते और समाविष्ट करते हैं।

* सत्य के सद्धर्म को ग्रहण करो, इसे रक्षित करो, इसे पढ़ो, और पुन: पढ़ो, इसकी थाह लो, इसे प्रकाशित करो तथा विश्व के सभी भागों के समस्त प्राणियों में इसका प्रचार करो।

* तथागत लोभी नहीं है और न संकीर्ण मनवाला है। वह उन सभी को पूर्ण बुद्ध-ज्ञान प्रदान करने के लिए सहमत है, जो उसे ग्रहण करना चाहते हैं। तुम उसके समान बनो और सत्य को मुक्त हस्त से प्रदान करने, प्रदर्शित करने और अर्पित करने में उसके उदाहरण का अनुकरण करो।

* धर्म के कल्याणकारी और प्रशान्तिदायी वचनों को सुनने की इच्छा करनेवाले श्रोताओ, तुम चारों ओर एकत्रित हो जाओ। अविश्वासियों को सत्य को ग्रहण करने के लिए जाग्रत् करो और उन्हें हर्ष एवं उल्लास से परिपूर्ण कर दो। उन्हें उत्प्रेरित करो, उन्हें उपदेश दो और उन्हें तब तक ऊँचे से ऊँचा उठाओ, जब तक वे सत्य को उसके समस्त वैभव और अनन्त गरिमा के साथ

सामने सामने न देख लें।

* हजारों निरर्थक शब्दों की अपेक्षा वह एक उपयोगी वाक्य उत्तम है, जिसके सुनने से व्यक्ति शान्ति प्राप्त करता है।

* अच्छा व्यक्ति सब कुछ त्याग देता है।
साधु इच्छा से प्रेरित होकर नहीं बोलता।
सुख या दुःख से प्रभावित होकर
विवेकी व्यक्ति न तो हर्ष प्रकट करता है
और न विषाद ही।

□□□

स्फुट

* स्वप्न से जाग और व्यर्थ कालक्षेप मत कर,
तू अपना मन सत्य की ओर अनावृत कर।
धर्माचरण कर और तू
परम निर्वाण को पा लेगा।

* जो भी आर्य अष्टांगिक मार्ग पर चलते हैं, उनमें से प्रत्येक धार्मिक जीवन के आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। जो धन से लिपटा हुआ है, उसके लिए यही अच्छा है कि अपने हृदय को उससे विषाक्त करने के बदले उसका परित्याग कर दे; किन्तु जो धन से लिपटा हुआ नहीं है और जिसके पास सम्पदा है तथा जो उसका सम्यक् उपयोग करता है, वह अपने सहगामी बन्धुओं के लिए वरदानस्वरूप हो जाएगा।

* मैं तुझसे कहता हूँ कि तू जीवन के अपने व्यवसाय में स्थित रह और अपने कर्म को परिश्रमपूर्वक सम्पन्न कर। जीवन, धन और [illegible]

बल्कि जीवन, धन और शक्ति के प्रति आसक्ति ही उसे वाँध लेती है।

* तथागत के धर्म के लिए व्यक्ति का अनिकेत होना, या संसार से विरत होना तव तक आवश्यक नहीं, जब तक स्वयं वह ऐसा करने की प्रेरणा नहीं पाता; परन्तु तथागत के धर्म के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति स्व के भ्रम से मुक्त हो जाए, अपने हृदय का परिमार्जन करे, सुख के प्रति अपनी तृष्णा का परित्याग करे और सदाचार का जीवन व्यतीत करे।

* हमारे शुभ और अशुभ कर्म छाया के समान हमारा अनुसरण करते हैं।

* वे सब, जो विवेकी है, शरीर के सुखों की अवहेलना करते हैं। वे काम की उपेक्षा करते हैं तथा अपने आध्यात्मिक अस्तित्व को विकसित करने की चेष्टा करते हैं।

* अगर वृक्ष प्रचण्ड ज्वाला से जल रहा हो, तो उसमें पक्षी कैसे बसेरा करेंगे? जहाँ वासना जीवित है, वहाँ सत्य का निवास नहीं हो सकता।

* काम का ज्वर सबके लिए भयानक होता है; वह संसार को बहा ले जाता है। जो इसके भँवर में फँस गया है, उसके लिए कोई बचाव नहीं है। किन्तु विवेक एक छोटी नौका है तथा चिन्तन पतवार है। धर्म का सिंहनाद तुम्हें मार (शत्रु) के प्रहर से मुक्त होने के लिए पुकार रहा है।

* चूँकि अपने कर्मों के फल से बचना असम्भव है, इसलिए हम सत्कर्म करें।

* सदाचरण और बुद्धिमत्ता के द्वारा अपनी वास्तविक गुरुता का प्रकाशन करो; सांसारिक वस्तुओं की निस्सारता पर गहन चिन्तन करो और जीवन की अस्थिरता को समझ जाओ।

* दूसरो का दोष देखना आसान है, किन्तु अपना (दोष) देखना कठिन है। व्यक्ति अपने पड़ोसी के दोषों को तो भूसे की तरह उड़ाता फिरता है, पर अपने दोषों को वह वैसे ही ढाँकता है, जैसे एक धोखेबाज झूठे पासों को जुआरी से छिपाता है।

* दोनों पक्षों की धैर्यपूर्वक सुनो। जो व्यक्ति दोनों

पक्षों को तोलता है, उसे मुनि कहा जाता है। जब दोनों पक्ष अपने मामले प्रस्तुत कर देते हैं, तब संघ को समझौता सम्पन्न करने दो और एकता की स्थापना की घोषणा करने दो।

* क्रोध में उच्चारित शब्द सबसे तीक्ष्ण तलवार है; लोलुपता सबसे घातक विष है; वासना प्रचण्डतम अग्नि है; अज्ञान गहनतम रात्रि है।

* अज्ञान से संसार ध्वस्त होता है। ईर्ष्या और स्वार्थपरायणता मैत्री को तोड़ती है। द्वेष सर्वाधिक तीव्र ज्वर है और बुद्ध उत्कृष्टतम वैद्य है।

* जो दुष्ट व्यक्ति एक सज्जन का अपमान करता है, वह उसके समान है, जो ऊपर देखता है और आकाश पर थूकता है; थूक से आकाश दूषित नहीं होता, बल्कि वह वापस आता है उसी को दूषित करता है।

* कोई व्यक्ति किसी को धोखा न दे। दुसरे की अवमानना न करे। क्रोध या उग्रता में भरकर किसी की हानि करने की इच्छा न करे।

* जिसका कामभाव नष्ट हो गया है, जो अहंकार

से मुक्त है, जिसने वासनाओं के सभी पथों पर विजय पायी है, वह शान्त, पूर्णतया सुखी और दृढ़ मनवाला होता है। ऐसा व्यक्ति संसार में सम्यक् रूप से विचरण करता है।

* जो श्रद्धा और सद्गुण से परिपूर्ण है, जो प्रतिष्ठित एवं सम्पंत्र है, वह जहाँ भी भ्रमण करता है, उसे सर्वत्र सम्मान मिलता है।

* जिस प्रकार स्वस्थ एवं दृढ़ जड़ोंवाले वृक्ष को काट डालने पर वह पुनः बढ़ने लगता है, उसी प्रकार जब तक प्रच्छन्न तृष्णा को निर्मूल नहीं किया जाता, तब तक दुःख बार बार पल्लवित होता है।

* इस संसार में जो भी इस क्षुद्र उद्दण्ड तृष्णा को पराजित करता है, उससे दुःख ठीक वैसे ही विलग हो जाते हैं, जैसे कमल-पत्र से जल की बूँदे।

* तुम्हें स्वयं चेष्टा करनी होगी। तथागत तो मात्र शिक्षक है। जो ध्यानी व्यक्ति मार्ग में प्रवेश करते हैं, वे मार के पाशों से मुक्त हो जाते हैं।

* जिस प्रकार जंग लोहे से उत्पन्न होते हुए भी

पैदा होते ही लोहे को खा जाता है, वैसे ही पापी व्यक्ति के अपने कर्म ही उसे दुर्गति की ओर ले जाते हैं।

* ऐसा कोई व्यक्ति न तो हुआ था, न होगा और न है, जो पूरी तरह से निन्दित हो या पूर्णतः प्रशंसित।

* स्वास्थ्य उच्चतम लाभ है, सन्तोष महत्तम सम्पदा है, गोपनीय उत्कृष्टतम रिश्तेदार है, निब्बाण (निर्वाण) अत्युच्च आनन्द है।

* विजय से द्वेष उत्पन्न होता है; पराजित दुःखपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। विजय और पराजय का त्याग करने पर ही सुखपूर्ण शान्त जीवन बिताया जा सकता है।

* काम के समान कोई अग्नि नहीं है तथा द्वेष के समान कोई अपराध नहीं है। शरीर के समान कोई व्याधि नहीं है और शान्ति (निर्वाण) से ऊँचा कोई आनन्द नहीं।

* जीवन के बहुतसे घरों ने
मुझे रोका – उसे खोजते हुए
जिसने खड़ा किया
इन इन्द्रियों के दुःखपूर्ण कैदखानों को;
मेरा अनवरत संघर्ष वेदनापूर्ण था!

पर अब,
तू (जो) इस आश्रय का निर्माता (है)
– तू;
मै तुझे जानता हूँ! तू फिर
कभी नहीं उठाएगा
पीड़ा की इन दीवारों को,
न ही छलावों की जड़ों के
वृक्षों को उगाएगा,
न मिट्टी पर नये बेड़े ही लगाएगा;
तेरा घर टूट चुका है और
छप्पर की कमानी टूट गयी है!
भ्रम ने इसे बनाया था!
मैं वहाँ से सुरक्षित गुजरता हूँ –
मुक्ति पाने के लिए।

□□□

आत्मभाव एक ज्वर है; आत्मभाव एक क्षणिक दृश्य है, एक सपना है,
किन्तु सत्य पूर्ण होता है,
सत्य उदात्त होता है, सत्य चिरन्तन होता है।
सत्य के अतिरिक्त अमरता कहीं नहीं होती।
क्योंकि सत्य ही सार्वकालिक होता है।

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य

ISBN 978-9-3837512-6-6

(H-88) Bhagawan Buddha ki Wani : ₹ 6.00